शिजी उर्फ पप्पू एवं अन्य

बनाम

राधिका एवं अन्य

(आपराधिक अपील नंबर 2094/2011)

14 नवंबर, 2011

{सिरियाक जोसेफ और टी.एस. ठाकुर, न्यायाधिपतिगण}

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973: 482 एवं 320- धारा 354 एवं 394 भारतीय दण्ड संहिता के तहत् दंडनीय अपराध करने के आरोप में अपीलार्थीओं के खिलाफ आपराधिक कार्यवाही- दोनों पक्षों के मध्य समझौता- आपराधिक कार्यवाही करने हेतु याचिका अंतर्गत धारा 482 माननीय उच्च न्यायालय द्वारा खारिज अपील में अभिनिर्धारित धारा 320 के अनुसार 354 भारतीय दण्ड संहिता में दण्डनीय अपराध जिस महिला के विरुद्ध कारित किया गया है उके अनुरोध पर शमनीय है तथा ऐसी कार्यवाहियों को रद्द किया जा सकता है। ऐसे मामलों में अभियोजन रद्द कर सकता है। उच्च न्यायालय को अपनी शक्ति अंतर्गत धारा 482 अत्यंत सावधानी व सतर्कता के साथ न्याय के उद्देश्यों को सुनिश्चित करने के लिए और केवल उन मामलों में जहां उस शक्ति का प्रयोग करने से इनकार करने के परिणामस्वरूप कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकता है किया जाना चाहिए। तत्काल

मामले में दोनों पक्षों के बीच दीवानी विवाद है दृष्यमान रूप से सुलझा लिया गया है। यह लाभ के लिए दिनदहाड़े लूट का मामला नहीं था। शिकायतकर्ता और दो कथित चश्मदीद गवाह जो शिकायतकर्ता से निकटता से संबंध रखते हैं, अभियोजन पक्ष के मत का समर्थन नहीं कर रहे हैं। इस प्रकार कार्यवाही का जारी रहना एक खोखली औपचारिकता के अलावा और कुछ नहीं है। कानूनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा उचित रूप से धारा 482 को लागू किया जा सकता है और इस प्रकार निचली अदालतों द्वारा व्यर्थ अभ्यास को रोका जा सकता है। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया जाता है और मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित अभियोजन को रद्द कर दिया जाता है। दण्ड संहिता, 1850 धाराएं 354 एवं 394।

एफ.आई.आर. में अपीलार्थीगण के खिलाफ अंतर्गत धारा 354 एवं 394 भारतीय दण्ड संहिता के तहत् दंडनीय अपराध करने का आरोप लगाते हुए आपराधिक कार्यवाही शुरू की गई थी। विचाराधीन मामले में ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षों के मध्य आपस में सौहार्दपूर्ण ढंग से मामला सुलझा लिया है। धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत् एक आपराधिक याचिका उच्च न्यायालय के समक्ष पक्षों के बीच दीवानी और आपराधिक विवादों के सौहार्दपूर्ण समाधान के आधार पर न्यायिक मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित परिवाद को खारिज करने के लिए दायर की गई थी, जिसमें यह

आरोप लगाया गया कि दोनों पक्षों के बीच भूमि विवाद था। जिसके परिणामस्वरूप अपीलार्थीगण और प्रतिवादी के पति और भाई के बीच विवाद हुआ। उच्च न्यायालय ने यह कहते हुए याचिका खारिज कर दी कि अपीलार्थीगण पर जिन अपराधों का आरोप लगाया गया था वे व्यक्तिगत प्रकृति के नहीं है। इसलिए, अपीलार्थीगण ने तत्काल अपील दायर की।

न्यायालय ने अपील को अनुमति देते हुए अभिनिर्धारित किया।

1.1 धारा 320 दण्ड प्रक्रिया संहिता उन अपराधों को सूचीबद्ध करता है जो उस न्यायालय की अनुमति से समझौता योग्य है जिसके समक्ष अभियोजन लंबित है और जिसका अनुमति के बिना भी समझौता किया जा सकता है। दण्डनीय अपराध अंतर्गत धारा 354 भारतीय दण्ड संहिता के तहत् धारा 320(2) के अनुसार उस महिला के अनुरोध पर समझौता योग्य है जिसके खिलाफ अपराध किया गया है। इसलिए उस हद तक धारा 354 के तहत् कार्यवाही को रद्द करने या अपराध को कम करने में कोई कठिनाई नहीं है, जिसमें अपीलार्थीगण पर आरोप लगाया गया है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपराध के कथित पीड़ित ने कथित हमलावरों के साथ मामला सुलझा लिया है। हालांकि, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 394 के तहत् दण्डनीय अपराध संबंधित न्यायालय की अनुमति के साथ या उसके बिना समझौता योग्य नहीं है। {पैरा 5} {142-ए-डी}

1.2. यह स्पष्ट है कि केवल इसलिए कि कोई अपराध धारा 320 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत् शमनीय नहीं है। उच्च न्यायालय के लिए धारा 482 दंड प्रक्रिया संहिता के तहत् अपनी शक्ति का प्रयोग करने से इनकार करने का कोई कारण नहीं है। इस शक्ति का प्रयोग उन मामलों में किया जा सकता है जहां अभियुक्त के खिलाफ दोषसिद्धि दर्ज करने की कोई संभावना नहीं है और मुकदमे की पूरी प्रक्रिया निरर्थक होने के लिए नियत है। वहीं एक ओर ट्रायल कोर्ट के समक्ष या अपील में पक्षों द्वारा अपराधों का समझौता और दूसरी ओर सीआरपीसी की धारा 482 के तहत् अभियोजन को रद्द करने की उच्च न्यायालय द्वारा शक्ति के प्रयोग के बीच एक सूक्ष्म अंतर है। जबकि एक न्यायालय एक अभियुक्त पर मुकदमा चला रही है या दोषसिद्धि के विरुद्ध अपील की सुनवाई कर रही है, ऐसे में मामलों में जहां अपराध धारा 320 के तहत् समझौता योग्य नहीं है, पक्षों के बीच हुए समझौते के आधार पर अपराध के समझौते की अनुमति देने में सक्षम नहीं हो सकती है, उच्च न्यायालय इसे रद्द कर सकता है। ऐसे मामलों में भी अभियोजन जहां अभियुक्त पर जिन अपराधों का आरोप लगाया गया है, वे गैर-शमनीय हैं। दण्ड प्रक्रिया की धारा 482 के तहत् उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियां दण्ड प्रक्रिया की धारा 320 द्वारा नियंत्रित उद्देश्य के लिए नहीं है, धारा 482 सीआरपीसी के तहत् शक्ति की प्रचुरता उच्च न्यायालय के लिए इसे अत्यधिक सावधानी और सतर्कता के साथ प्रयोग करना अनिवार्य बनाता है। शक्ति का

क्षेत्राधिकार और प्रकृति ही मांग करती है कि इसका प्रयोग संयमित हो ओर केवल उन मामलों में जहां उच्च न्यायालय दर्ज किए जाने वाले कारणों से, स्पष्ट विचार रखता है कि अभियोजन जारी रखना कानूनी प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं होगा। उन स्थितियों की गणना करना न तो आवश्यक है और न ही उचित है जिनमें धारा 482 के तहत् शक्ति का प्रयोग उचित हो सकता है। यह कहा जा सकता है कि शक्ति का प्रयोग न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए होना चाहिए और केवल उन मामलों में जहां उस शक्ति का प्रयोग करने से इनकार करने पर कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकता है। यदि उच्च न्यायालय को साक्ष्य की विवेचना करने के लिए कहा जाता है तो हस्तक्षेप को अस्वीकार करने में न्यायसंगत हो सकता है, क्योंकि धारा 482 सीआरपीसी के तहत् याचिका के निस्तारण के दौरान वह अपीलीय अदालत की भूमिका नहीं निभा सकता है। उच्च न्यायालय को उपर्युक्त तथ्यों पर विचार करना होगा और प्रत्येक मामले की परिस्थितियां यह निर्धारित करने के लिए कि क्या यह एक उपयुक्त मामला है जिसमें अंतर्निहित शिक्तयों को लागू किया जा सकता है। {पैरा 13} {148-जी-एच; 149-ए-एफ}

1.3 वर्तमान मामले में, विचाराधीन घटना की उत्पत्ति दो भूखण्डों तक पहुंच से संबंधित विवाद में हुई थीं जो एक-दूसरे से सटे हुए हैं। यह लाभ के लिए दिनदहाड़े लूट का मामला नहीं था, यह एक ऐसा मामला था

जिसका मूल पक्षों के बीच दीवानी विवाद था, ऐसा प्रतीत होता है कि विवाद को उनके द्वारा सुलझा लिया गया है। ऐसा होने पर अभियोजन को जारी रखना जहां शिकायतकर्ता उन आरोपों का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं है, जिन्हें अब उसके द्वारा कुल "गलतफहमी या गलत धारणा" से उत्पन्न बताया गया है, एक निरर्थक अभ्यास होगा जिसका कोई उद्देश्य नहीं होगा। साथ ही दो कथित चश्मदीद गवाह, जो शिकायतकर्ता के करीबी रिश्तेदार हैं, वे भी अब अभियोजन पक्ष की कहानी का समर्थन नहीं कर रहे हैं। ऐसे में कार्यवाही जारी रखना एक खाली औपचारिकता के अलावा और कुछ नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में कानूनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता को उचित रूप से लागू किया जा सकता है और इस तरह निचली अदालतों द्वारा व्यर्थ अभ्यास को रोका जा सकता है। उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश को रद्द कर दिया गया है और न्यायालय न्यायिक मजिस्ट्रेट में लंबित अभियोजन को रद्द कर दिया गया है। {पैरा 14 एवं 15} {149-जी-एच; 150-ए-जी}

मदन मोहन मठाधीन बनाम पंजाब राज्य (2008) 4 एससीसी 582; *रामलाल एवं अन्य बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य* (1999) 2 एससीसी 213; *वाई. सुरेश बाबू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य जेटी* (1987) 2 एससी 361; *महेश चंद बनाम राजस्थान राज्य* 1990 सप्ल. एसीसी 681; *ईश्वर*

सिंह बनाम मध्यप्रदेश राज्य (2008) 15 एससीसी 667; *कर्नाटक राज्य बनाम एल. मुनिस्वामी और अन्य* (1977) 2 एससीसी 699; *माधवराव जीवाजीराव सिंधिया एवं अन्य बनाम संभाजीराव चंद्रोजीराव आंग्रे एवं अन्य* (1988) 1 एससीसी 692; *बी.एस. जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य* (2003) 4 एससीसी 675; *मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य* (1977) 4 एससी 551; *निखिल मर्चेंट बनाम सीबीआई* 2008 (9) एससीसी 677; *मनोज शर्मा बनाम राज्य एवं अन्य* (2008) 16 एससीसी 1-संदर्भित।

(2008) 4 एससीसी 582 पैरा 7 पर उल्लेख किया गया है।

(1999) 2 एससीसी 21 पैरा 7 पर उल्लेख किया गया है।

जेटी (1987) 2 एससी 361 पैरा 7 पर उल्लेख किया गया है।

1990 सप्ल. एसीसी 681 पैरा 7 पर उल्लेख किया गया है।

(2008) 15 एससीसी 667 पैरा 7 पर उल्लेख किया गया है।

(1977) 2 एससीसी 699 पैरा 7 पर उल्लेख किया गया है।

(1988) 1 एससीसी 692 पैरा 9 पर उल्लेख किया गया है।

(2003) 4 एससीसी 675 पैरा 10 पर उल्लेख किया गया है।

(1977) 4 एससी 551 पैरा 10 पर उल्लेख किया गया है।

2008 (9) एससीसी 677 पैरा 12 पर उल्लेख किया गया है।

2008) 16 एससीसी 1 पैरा 12 पर उल्लेख किया गया है।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकार: आपराधिक अपील संख्या 2094/2011

केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम के आपराधिक मुत्तफर्रिक संख्या 3715/2010 में निर्णय एवं आदेश दिनांकित 28.09.2010 से।

डा. सुमन्त भारद्वाज, स्क्वाहिल गर्ग, आरती शर्मा, मृदुल राय भारद्वाज, पी. ए. नूर मोहम्मद, गिफारा एस. अजित कृष्णन, रामेश्वर प्रसाद गोयल, आर. आनन्द पद्मनाभन्, पृथ्वी राज बी.एन., शशि भूषण कुमार अपीलार्थीगण की ओर से।

सी.डी. सिंह, सन्नी चैधरी, अनिता शेनाॅय, जोगी स्कारिया, पी. सुरेशन प्रत्यर्थीगण की ओर से।

न्यायालय का निर्णय **टी.एस. ठाकुर,** न्यायाधिपति के द्वारा दिया गया था।

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. यह अपील केरल उच्च न्यायालय, एर्नाकुलम द्वारा पारित एक आदेश से उत्पन्न हुई है, जिसके तहत् दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482 के तहत् दायर आपराधिक मु. संख्या 3715/2010 जिसमें भारतीय दण्ड संहिता की धारा 354 और 394 के तहत् दण्डनीय अपराध करने का आरोप लगाते हुए एफआईआर संख्या 6/2010 में आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने का निवेदन किया गया था जो खारिज कर दी गई

है। उच्च न्यायालय ने यह विचार किया कि जिन अपराधों के लिए अपीलार्थीगण पर आरोप लगाए गए हैं, वे 'व्यक्तिगत प्रकृति' के नहीं हैं, ताकि पहले सूचनादाता-शिकायतकर्ता और उनके बीच हुए समझौते के आधार पर लंबित आपराधिक कार्यवाही को रद्द करना उचित ठहराया जा सके। अपीलार्थी इसलिए एकमात्र प्रश्न जो विचार के लिए उठता है, वह यह है कि क्या संबंधित आपराधिक कार्यवाही को मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में समझौते के आधार पर रद्द किया जा सकता है।

3. प्रतिवादी-राधिका ने पुलिस स्टेशन, नेमोम, केरल में एक मौखिक शिकायत दर्ज की, जिसमें कहा गया कि वह अपने पति के साथ एक साईट देखने गई थी, जिसे बाद में पुंजाकारी में अधिग्रहित किया गया था। घटनास्थल पर पहुंचने पर उसके पति और भाई राजेश प्लाॅट के अंदर चले गए, जबकि वह पास में खड़ी कार के पास उनका इंतजार कर रही थी। इसी दौरान तीन युवक मोटर साइकिल पर आए जिनमें से एक ने उसके हाथ से पर्स और मोबाईल फोन छीन लिया एवं दूसरे ने उसके गाल और हाथ पर वार किया। उसने शोर मचाया जिससे उसका पति और भाई दौड़कर कार के पास आए तो अपराधी मोटरसाइकिल पर करुमम की ओर भाग गए। शिकायतकर्ता ने पुलिस को मोटर साइकिल का पंजीकरण नंबर दिया और उन अपीलार्थीओं के खिलाफ कार्यवाही करने की मांग की, जिनका नाम उसने नेमोम पुलिस थाना से जुड़े अतिरिक्त पुलिस उप-

निरीक्षक के सामने दिए गए बयान में लिया था। उस बयान के आधार पर थाने में एफआईआर संख्या 6/2010 दर्ज की गई और जांच शुरू की गई। नेय्यत्तिंकारा, न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम के समक्ष अपीलार्थीओं के खिलाफ एक आरोप पत्र क्रमांक 183/2010 पेश किया गया।

4. उपरोक्त आपराधिक कार्यवाही के लंबित रहने के दौरान ऐसा प्रतीत होता है कि पक्षों ने आपस में सौहार्दपूर्ण ढंग से मामले को सुलझा लिया है। आपराधिक मुतफर्रिक संख्या 3715/2010 अंतर्गत धारा 482 सीआरपीसी नेय्यत्तिंकारा, न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम के समक्ष लंबित शिकायत को रद्द करने के लिए केरल उच्च न्यायाल, एर्नाकुलम के समक्ष दायर किया गया था। वह प्रार्थना मुख्यतः इस आधार पर की गई थी कि अपीलार्थी नंबर 1 शिजी उर्फ पप्पू, जो प्रतिवादी राधिक द्वारा खरीदी गई संपत्ति के पास की जमीन का एक टुकड़ा भी है, दोनों संपत्तियों की ओर जाने वाली सड़क के संबंध में कुछ विवाद था। इस संबंध में एक ओर अपीलार्थीगण एवं दूसरी ओर प्रतिवादी का पति और भाई के बीच एक विवाद था, जो उक्त पंजीकृत एफआईआर में उल्लिखित है। में जमीन का एक टुकड़ा भी रखता है। याचिका में आगे कहा गया कि पक्षों के बीच सभी दीवानी और आपराधिक विवादों को सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझा लिया गया है और प्रतिवादी को भूखण्डों तक पहुंच के संबध में अपीलार्थीगण के खिलाफ कोई शिकायत नहीं है और प्रतिवादी को उनके खिलाफ आपराधिक

कार्यवाही रद्द किए जाने पर कोई आपत्ति नहीं है। धारा 482 दण्ड प्रक्रिया संहिता के तहत् अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा अपीलार्थीगण के विरुद्ध आपराधिक कार्यवाही को खारिज किया जा रहा है। याचिका में आगे कहा गया है कि पक्षों के बीच विवाद व्यक्तिगत प्रकृति के होने के कारण *मदन मोहन एबॉट बनाम पंजाब राज्य* (2008) 4 एससीसी 582 मामले में इस न्यायालय के फैसले पर निर्भर रहते हुए इसे सुलझा हुआ माना जा सकता है और कार्यवाही समाप्त की जा सकती है। प्रतिवादी द्वारा एक शपथ पत्र भी पेश किया गया था जिसमें कहा गया था कि मामला पक्षों के बीच सुलझ गया है और अपीलार्थीगण द्वारा उच्च न्यायालय के समक्ष भी पेश किया गया था। उच्च न्यायालय ने विचार करने के बाद अपीलार्थीगण द्वारा किए गए निवेदन को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि अपीलार्थीगण द्वारा किए गए अपराध व्यक्तिगत प्रकृति के नहीं थे, ताकि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत् अपने असाधारण क्षेत्राधिकार के प्रयोग में कार्यवाही को रद्द करने को उचित ठहराया जा सके।

5. उभयपक्षों के विद्वान अधिवक्तागण को सुना एवं आक्षेपित आदेश का अवलोकन किया। सीआरपीसी की धारा 320 उन अपराधों को सूचीबद्ध करता है जो उस न्यायालय की अनुमति से समझौता योग्य हैं जिसके समक्ष अभियोजन लंबित है और जिसमें बिना अनुमति के भी

समझौता किया जा सकता है। भारतीय दण्ड संहिता की धारा 354 के तहत् दण्डनीय अपराध संहिता की धारा 320(2) के अनुसार उस महिला के अनुरोध पर शमनीय है जिसके खिलाफ अपराध किया गया है। इसलिए इस हद तक धारा 354 के तहत् कार्यवाही को रद्द करने या अपराध को कम करने में कोई कठिनाई नहीं है, जिसमें अपीलार्थीगण पर आरोप लगाया गया है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि अपराध के कथित पीड़ित ने कथित हमलावरों के साथ मामला सुलझा लिया है। हालांकि, भारतीय दण्ड संहिता की धारा 394 के तहत् दण्डनीय अपराध संबंधित न्यायालय की अनुमति के साथ या अनुमति के बिना समझौता योग्य नहीं है। सवाल यह है कि क्या उच्च न्यायालय सीआरपीसी की धारा 482 के तहत् पक्षों द्वारा किए गए समझौते के आलोक में उक्त प्रावधान के तहत् अभियोजन को रद्द करने के लिए अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता था और उसे करना चाहिए था?

6. अपीलार्थीगण के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया कि पहली सूचना शिकायतकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष दायर हलफनामे में स्पष्ट रूप से स्वीकार किया था कि उसके द्वारा तथ्यों और अपराधों के बारे में गलतफहमी और गलत धारणा के कारण शिकायत दर्ज की गई थी। जिनमें से अपीलार्थीगण को आरोपी बनाया गया हैं। जिन पक्षों के बीच व्यक्तिगत विवाद उत्पन्न हुए हैं, वे पूरी तरह से व्यक्तिगत प्रकृति के हैं। यह भी

स्पष्ट था कि शिकायतकर्ता अब उस तथ्य का समर्थन नहीं कर रहा था जिस पर अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थीगण के खिलाफ अपना मामला रखा था। विद्वान अधिवक्ता के अनुसार शिकायतकर्ता ने शपथपत्र में जो कहा था उसके आलोक में ट्रायल कोर्ट द्वारा अपीलार्थीगण के खिलाफ दोषसिद्धि दर्ज करने का कोई सवाल ही नहीं था। यह और भी अधिक था कि जब अभियोजन पक्ष के अन्य दो गवाह कोई और नहीं बल्कि शिकायतकर्ता का पति और भाई थे, जो भी अपीलार्थीगण के खिलाफ आरोपों का समर्थन नहीं कर रहे थे। ऐसी स्थिति में अपीलार्थीगण के खिलाफ आपराधिक मुकदमा जारी रखना कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग और निचली अदालतों के बहुमूल्य समय की बर्बादी के अलावा और कुछ नहीं था। विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि इस तरह के दुरुपयोग को रोकने के लिए धारा 482 सीआरपीसी के तहत् उच्च न्यायालय द्वारा शक्ति का प्रयोग पूरी तरह से उचित है। उक्त *मदन मोहन मठाधीश* के मामले में इस अदालत के फैसल पर विद्वान अधिवक्ता द्वारा समर्थन पर भरोसा रखा गया था।

7. इस न्यायालय ने कई निर्णयों में यह घोषणा की कि धारा 320 सीआरपीसी के तहत् अपराध जो न्यायालय की अनुमति के साथ या अनुमति के बिना शमनीय नहीं है, उन्हें समझौता करने की अनुमति नहीं दी सकती है। *रामलाल एवं अन्य बनाम जम्मू एवं कश्मीर राज्य* (1999) 2 एससीसी 213 में इस न्यायालय ने धारा 320(9) सीआरपीसी का

उल्लेख यह घोषणा करने के लिए कि ऐसे अपराध जिन्हें धारा 320 के तहत् शमनीय बनाया गया है, केवल उसी में समझौता किया जा सकता है किसी अन्य में नहीं। इस न्यायायल ने *वाई. सुरेश बाबू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य जेटी* (1987) 2 एससी 361 एवं *महेश चंद बनाम राजस्थान राज्य* 1990 सप्ल. एसीसी 681 मामले में दिए गए दो पूर्व निर्णयों में घोषित किया कि सीआरपीसी की धारा 320 के तहत् अन्यथा शमनीय नहीं होने वाले अपराधों की समान अनुमत संरचना के अनुसार प्रति अपराध होगा। हालांकि, जो महत्वपूर्ण है वह यह है कि *उक्त रामलाल* के मामले में अपीलार्थीगण को भारतीय दण्ड सहिता की धारा 326 के तहत् उसे शमन करने की अनुमति नहीं दे सकती थी। फिर भी समझौते को अदालत ने शमनकारी परिस्थितियों को कम करने वाली स्थिति के रूप में लिया जिस पर अदालत ने अपीलार्थीगण को दी गई सजा को पूर्व से ही भुगती हुई अवधि तक कम करने पर विचार किया। *ईश्वर सिंह बनाम मध्यप्रदेश राज्य* (2008) 15 एससीसी 667 मामला भी इस न्यायालय का इसी आशय है, जिसमें न्यायालय ने कहा है कि

> **"14.** हमारी सुविचारित राय में, वैधानिक प्रावधानों की अनदेखी और उन्हें अलग रखते हुए, संहिता के तहत् शमनीय न होने वाले अपराध के लिए समझौता करने का आदेश देना उचित नहीं होगा।"

8. निर्णयों की एक और पंक्ति है जिसमें इस न्यायालय ने पक्षों के बीच हुए समझौते पर ध्यान दिया और सीआरपीसी की धारा 482 के तहत् उच्च न्यायालय में निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए अभियोजन रद्द कर दिया है। *कर्नाटक राज्य बनाम एल. मुनिस्वामी और अन्य* (1977) 2 एससीसी 699 मामले में इस न्यायालय ने माना कि उच्च न्यायालय कार्यवाही रद्द करने का हकदार है यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि न्याय के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु आवश्यकता है। इस न्यायालय ने कहा:

> ".....नई संहिता की धारा 482 जो 1898 की संहिता की धारा 561-ए से मेल खाती है, यह प्रावधान करती है कि:
>
> "इस संहिता की कोई भी बात किसी भी आदेश को प्रभावी करने या किसी न्यायालय की प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने या न्याय के उद्देश्य की पूर्ति हेतु आदेश देने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को सीमित या प्रभावित करने वाली नहीं मानी जाएंगी।"

इस सम्पूर्ण शक्ति के प्रयोग में उच्च न्यायालय किसी कार्यवाही को रद्द करने का हकदार है। यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कार्यवाही जारी रखने की अनुमति देना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा या न्याय के उद्देश्यों के लिए यह आवश्यक है कि कार्यवाही रद्द होनी चाहिए। दीवानी एवं आपराधिक मामलों में उच्च न्यायालय की अंतिर्निहित शक्तियों

की बचत एक हितकारी सार्वजनिक उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए की गई है, जो यह है कि न्यायालय की कार्यवाही को उत्पीड़न या उत्पीड़न के हथियार में बदलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। एक आपराधिक मामले में लंगड़े अभियोज के पीछे छिपी हुई वस्तु, उस सामग्री की प्रकृति जिस पर अभियोजन की संरचना टिकी हुई है और इसी तरह की बातें उच्च न्यायालय को मामले को रद्द करने लिए न्याय हित में उचित ठहराएगी। न्याय के लक्ष्य साध्य या केवल कानून से ऊँचा है, हालांकि न्यायल को विधायिका द्वारा बनाए गए कानूनों के अनुसार प्रशासित किया जाना चाहिए। इन टिप्पणियां को बनाने के लिए अनिवार्य आवश्यकता यह है कि प्रावधान के उद्देश्य और उनकी उचित प्राप्ति के बिना, जो राज्य और उसके विषयों के बीच न्याय करने के लिए उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियों को बचाने का प्रयास करता है, उस प्रमुख क्षेत्राधिकार की चैड़ाई वं रूपरेखा की सराहना करना असंभव होगा।

9. *माधवराव जीवाजीराव सिंधिया एवं अन्य बनाम संभाजीराव चंद्रोजीराव आंग्रे एवं अन्य* (1988) 1 एससीसी 692 मामले में इस न्यायालय ने माना है कि उच्च न्यायालय को किसी विशेष मामले में दिखाई देने वाली किसी विशेष विशेषता को ध्यान में रखना चाहिए ताकि यह विचार किया जा सके कि अभियोजन को जारी रखने या अभियोजन

को रद्द करने की अनुमति देना समीचीन और न्याय के हित में है या नहीं। उसकी राय में अंतिम सजा की संभावना कम है। इस न्यायालय ने कहा:

> *"**7.** कानूनी स्थिति अच्छी तरह से स्थापित है कि जब प्रारंभिक चरण में अभियोजन को रद्द करने के लिए कहा जाता है, तो अदालत द्वारा लागू किया जाने वाला परीक्षण यह है कि क्या लगाए गए निर्विवाद आरोप प्रथम दृष्ट्या अपराध स्थापित करते हैं या नहीं। यह भी है अदालत को किसी विशेषज्ञ मामले में दिखाई देने वाली किसी भी विशेष विशेषता पर विचार करने के लिए विचार करना चाहिए कि क्या अभियोजन जारी रखने की अनुमति देना समीचीन और न्यायहित में है। ऐसा इस आधार पर है कि अदालत का उपयोग किसी भी अप्रत्यक्ष उद्देश्य के लिए नहीं किया जा सकता है। और जहां अदालत की राय में अंतिम दोषसिद्धि की संभावना कम है और इसलिए आपराधिक मुकदमा जारी रखने की अनुमति देने से कोई उपयोगी उद्देश्य पूरा होने की संभावना नहीं है, अदालत मामले के विशेष तथ्यों पर विचार करते हुए मामले को रद्द भी कर सकती है, फिर कार्यवाही भले ही प्रारंभिक चरण में हो।"*

10. *बी.एस. जोशी एवं अन्य बनाम हरियाणा राज्य* (2003) 4 एससीसी 675 मामले में जो प्रश्न इस न्यायालय के विचाराधीन था वह यह था कि क्या सीआरपीसी की धारा 482 के तहत् उच्च न्यायालय में निहित अंतर्निहित शक्तियां सही हैं। गैर-शमनीय अपराधों को रद्द करने के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है। उस मामले में, *मधु लिमये बनाम महाराष्ट्र राज्य* (1977) 4 एससी 551 में न्यायालय के फैसले पर भरोसा करते हुए उच्च न्यायालय ने माना था कि चूंकि धारा 498ए और 406 भारतीय दण्ड संहिता के तहत् अपराध समझौता योग्य नहीं थे, इसलिए यह शमनीय नहीं था। इस आधार पर कि दोनों पक्षों के बीच समझौता हो गया है, एफआईआर को रद्द करना कानून में स्वीकार्य नहीं है। इस न्यायालय ने घोषणा की कि *उक्त मधु लिमये* के मामले में निर्णयों को उच्च न्यायालय द्वारा गलत तरीके से पढ़ा और गलत तरीके से लागू किया गया था और *उक्त मधु लिमये* मामले में इस न्यायालय के फैसले ने स्पष्ट रूप से इस दृष्टिकोण का समर्थन किया कि धारा 320(2) में निहित कुछ भी नहीं हो सकता है। यदि उच्च न्यायालय द्वारा हस्ताक्षर को न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए पार्टियों के लिए आवश्यक माना जाता है तो उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्ति के प्रयोग को सीमित करना या प्रभावित करना है। इस न्यायालय ने कहा:

"8. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि *उक्त मधु लिमये* (1977) 4 एससी 551 मामला आपराधिक कार्यवाही या एफआईआर या शिकायत को रद्द करने की शक्ति को सीमित करने वाला कोई सामान्य प्रस्ताव नहीं देता है जैसाकि संहिता की धारा 482 में निहित है या भारत के संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत् असाधारण शक्ति है। हमारा विचार है कि यदि न्याय के उद्देश्य को सुरक्षित करने के लिए एफआईआर को रद्द करना आवश्यक हो जाता है तो धारा 320 रद्द करने की शक्ति के प्रयोग में बाधा नहीं होगी। यह है हालांकि प्रत्येक मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों के आधार पर यह अलग मामला है कि ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाए या नहीं।

उपरोक्त चर्चा के मद्देनजर हम मानते हैं कि उच्च न्यायालय अपनी अंतर्निहित शक्तियों का प्रयोग करके आपराधिक कार्यवाही या एफआईआर या शिकायत को रद्द कर सकता है और संहिता की धारा 320 धारा 482 के तहत् शक्तियों को सीमित या प्रभावित नहीं करती है।"

11. यह *उक्त मदन मोहन आबट* मामले में इस न्यायालय के फैसले को सामने लाता है, जिसके तहत् उच्च न्यायालय ने भारतण दण्ड संहिता की धारा 379, 406, 409, 418, 506/34 के तहत् दण्डनीय अपराध के

लिए अभियोजन को रद्द करने की प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया था। शिकायतकर्ता और आरोपी के बीच समझौता हो गया। उच्च न्यायालय का मानना था कि चूंकि धारा 406 के तहत् दण्डनीय अपराध शमनीय नहीं है, इसलिए पक्षों के बीच समझौते को मान्यता नहीं दी जा सकती और न ही लंबित कार्यवाही रद्द की जा सकती है। इस न्यायालय ने ऐसे मामलों में अपनाए जाने वाले दृष्टिकोण को निम्नलिखित शब्दों में संक्षेपित किया है:

> **"6.** हमें इस बात पर जोर देने की जरूरत है कि शायद यह सलाह दी जाती है कि जिन विवादों में प्रश्न पूरी तरह से व्यक्तिगत प्रकृति का है, न्यायालय को आम तौर पर आपराधिक कार्यवाही में भी समझौते की शर्त को स्वीकार करना चाहिए क्योंकि मामले को बिना किसी संभावना के जीवित रखा जाना चाहिए। अभियोजन पक्ष के पक्ष में परिणाम एक विलासिता है जिसे न्यायालय, अत्यधिक बोझ से दबी होने के कारण वहन नहीं कर सकती है और इस प्रकार बचाए गए समय का उपयोग अधिक प्रभावी और सार्थक मुकदमेबाजी पर निर्णय लेने का किया जा सकता है। यह जमीन पर आधारित मामलों के लिए एक सामान्य ज्ञान दृष्टिकोण है वास्तविकताओं से रहित और कानून की तकनीकों से रहित हैं।

7. हम आक्षेपित आदेश से देखते हैं कि विद्वान न्यायाधीश ने कार्यवाही को रद्द करने के साथ अपराध के शमन को भ्रमित कर दिया है। 250/- रूपए की बाहरी सीमा जिसके कारण आवेदन खारिज कर दिया गया, बाद के मामले में एक अप्रासंगिक कारक है। तदनुसार, हम अपील की अनुमति देते हैं और मामले के विशिष्ट तथ्यों को ध्यान में रखते हुए निर्देश देते हैं कि एफआईआर संख्या 155 दिनांकित 17.11.2001 पीएम कोतवाली, अमृतसर और उससे जुड़ी सभी कार्यवाही रद्द मानी जाएगी।"

12. इसी आशय का निर्णय *निखिल मर्चेंट बनाम सीबीआई* 2008 (9) एससीसी 677 में इस न्यायालय का है जहां बी.एस. जोशी के निर्णय पर भरोसा किरते हुए न्यायालय ने पक्षों के बीच हुए समझौते पर ध्यान दिया और धारा 420, 467, 468 और 471 सपठित धारा 120 बी भारतीय दण्ड संहिता के तहत् दण्डनीय अपराधों के लिए आपराधिक कार्यवाही के साथ रद्द कर दिया और यह माना गया कि चूंकि आपराधिक कार्यवाही एक दीवानी विवाद की तरह था, जिसे पार्टियों के बीच सौहार्दपूर्ण ढंग से सुलझाया गया था इसलिए यह एक उपयुक्त मामला था, जहां तकनीकता को उसी के जारी रहने के बाद से आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के रास्ते में आने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। पक्षों के बीच समझौता

होने के बाद यह एक निरर्थक प्रयास होगा। इस स्तर पर हम मनोज शर्मा बनाम राज्य एवं अन्य (2008) 16 एससीसी 1 मामले में इस न्यायालय के निर्णय का भी उल्लेख कर सकते हैं। इस न्यायालय ने कहा:

> **"8.** हमारे विचार में, आपराधिक कार्यवाही को रद्द करने के लिए संविधान के अनुच्छेद 226 के तहत् अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने से उच्च न्यायालय के इनकार कर समर्थन नहीं किया जा सकता है। शिकायतकर्ता द्वारा दर्ज की गई प्रथम सूचना रिपोर्ट शिकायतकर्ता और उनके बीच विवाद का संकेत देती है। अभियुक्त जो निजी प्रकृति का है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि प्रथम सूचना रिपोर्ट पुलिस अधिकारियों द्वारा जांच का आधार थी, लेकिन पक्षों के बीच विवाद व्यक्तिगत प्रकृति का था। एक बार शिकायतकर्ता ने मामले को आगे न बढ़ाने का फैसला किया। मामला आगे का है, उच्च न्यायालय इस मामले पर अधिक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपना सकता था।
>
> **9.** जैसा कि हमने यहां पहले संकेत दिया है, संविधान के अनुच्छेद 226 की धारा 482 सीआरपीसी के तहत् शक्ति का प्रयोग प्रत्येक मामले के तथ्यों में विवेकाधीन है। इस

मामले के तथ्यों में हमारा मानना है कि आपराधिक कार्यवाही जारी रखना व्यर्थ की कवायद होगी....."

13. यह स्पष्ट है कि धारा 482 सीआरपीसी के तहत् उच्च न्यायालय द्वारा अपनी शक्ति का प्रयोग करने से इनकार करने के लिए कारण नहीं है सिर्फ इसलिए आईपीसी की धारा 320 के तहत् कोई अपराध शमनीय नहीं है। हमारी राय में उन शक्ति का प्रयोग उन मामलों में किया जा सकता है जहां आरोपी के खिलाफ दोषसिद्धि दर्ज करने की कोई संभावना नहीं है और मुकदमे की पूरी प्रक्रिया निरर्थक होने के लिए नियत है। एक ओर ट्रायल कोर्ट के समक्ष या अपील में पक्षों द्वारा अपराधों का समझौता और दूसरी ओर धारा 482 सीआरपीसी के तहत् अभियोजन रद्द करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा शक्ति के प्रयोग के बीच एक सूक्ष्म अंतर है। जबकि एक अदालत किसी आरोपी पर मुकदमा चला रही है या दोषसिद्धि के खिलाफ अपील सुन रही है, ऐसे मामलों में पक्षकारान् के बीच हुए समझौते के आधार पर अपराध के शमन की अनुमति देने में सक्षम नहीं हो सकती है, जहां अपराध धारा 320 के तहत् शमनीय नहीं है उच्च न्यायालय रद्द कर सकता है उन मामलों में भी अभियोजन जहां अभियुक्त पर जिन अपराधों का आरोप लगाया गया है, वे गैर-शमनीय हैं। 482 सीआरपीसी के तहत् उच्च न्यायालय की अंतर्निहित शक्तियां धारा 320 सीआरपीसी द्वारा नियंत्रित उस उद्देश्य के लिए नहीं है। ऐसा कहने के बाद,

हमें यह जोड़ने में जल्दबाजी करनी चाहिए कि सीआरपीसी की धारा 482 के तहत् शक्ति की प्रचुरता अपने आप में उच्च न्यायालय के लिए इसे अत्यधिक सावधानी और सतर्कता के साथ प्रयोग करना अनिवार्य बनाता है। शक्ति की चैड़ाई एवं प्रकृति यह मांग करती है कि इसका प्रयोग संयमित हो और केवल उन मामलों में जहां उच्च न्यायालय, दर्ज किए जाने वाले कारणों से स्पष्ट विचार रखता है कि अभियोजन जारी रखना कानूनी प्रक्रिया के दुरुपयोग के अलावा और कुछ नहीं होगा। हमारे लिए उन स्थितियों की गणना करना न तो आवश्यक है और न ही उचित है जिनमें धारा 482 के तहत् शक्ति का प्रयोग उचित हो सकता है। हमें बस इतना ही कहना है कि शक्ति का प्रयोग न्याय के उद्देश्यों को सुरक्षित करने के लिए होना चाहिए और केवल उन मामलों में जहां उस शक्ति का प्रयोग करने से इनकार करने पर कानूनी प्रक्रिया का दुरुपयोग हो सकता है। यदि उच्च न्यायालय को साक्ष्य की सराहना करने के लिए कहा जाता है तो हस्तक्षेप को अस्वीकार करने में न्यायसंगत हो सकता है क्योंकि दण्ड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के तहत् याचिका से निपटने के दौरान वह अपीलीय अदालत की भूमिका नहीं निभा सकता है। उपरोक्त के अधीन, उच्च न्यायालय को यह निर्धारित करने के लिए प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करना होगा कि क्या यह एक उपयुक्त मामला है जिसमें अंतर्निहित शक्तियों को लागू किया जा सकता है।

14. मामले पर आते हुए हमारा मानना है कि विचाराधीन घटना की उत्पत्ति दो भूखण्डों तक पहुंच से संबंधित विवाद में हुई थी जो एक-दूसरे से सटे हुए हैं। यह लाभ के लिए दिनदहाड़े लूट का मामला नहीं था, यह एक ऐसा मामला था जिसकी उत्पत्ति पक्षकारान् के बीच दीवानी विवाद में हुई थी, ऐसा प्रतीत होता है कि विवाद उनके द्वारा सुलझा लिया गया है। ऐसा होने पर, अभियोजन को जारी रखना जहां शिकायतकर्ता उन आरोपों का समर्थन करने के लिए तैयार नहीं है, जिन्हें अब उसके द्वारा कुछ "गलतफहमी या गलत धारणा" से उत्पन्न होने के रूप में वर्णित किया गया है, एक निरर्थक अभ्यास होगा। जिससे कोई भी उद्देश्य पूरा नहीं होगा। उल्लेखनीय है कि दो कथित चश्मदीद गवाह, जो शिकायतकर्ता के करीबी रिश्तेदार है, भी अब अभियोजन पक्ष के बयान का समर्थन नहीं कर रहे हैं। ऐसे में कार्यवाही जारी रखना एक कोरी औपचारिकता के अलावा और कुछ नहीं है। धारा 482 सीआरपीसी ऐसी परिस्थितियों में कानूनी प्रक्रिया के दुरुपयोग को रोकने के लिए भी उच्च न्यायालय द्वारा उचित रूप से आवेदन किया जा सकता है और इस प्रकार निचली अदालतों द्वारा बेकार अभ्यास को रोका जा सकता है।

15. हम तदनुसार इस अपील की अनुमति देते हैं, उच्च न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश को रद्द करते हैं और नेय्यत्तिंकारा, न्यायिक

मजिस्ट्रेट प्रथम के न्यायालय में लंबित सीसी 183/2010 में अभियोजन को रद्द करते हैं।

एन.जे.

अपील स्वीकार।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी आशुतोष सिंह आढ़ा (आर.जे.एस.), वरिष्ठ सिविल न्यायाधीश एवं अति. मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, दूदू, जिला जयपुर द्वारा किया गया है।

अस्वीकारण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अग्रेंजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।